डा० राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यानमाला

संचार और विकास

प्रो० श्यामाचरण दुबे

प्रकाशन विभाग

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यानमाला

संचार और विकास

प्रो० श्यामाचरण दुबे

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

माघ 1907, फरवरी 1986

मूल्य : 5.50

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार, (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई–400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता–700069
- एल० एल० आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास–600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम–695001
- 10–बी, स्टेशन रोड, लखनऊ–226001
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद–500004

महाप्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली—110001 द्वारा मुद्रित

श्रृंखला

आकाशवाणी द्वारा प्रति वर्ष दो सम्मानित भाषणमालाओं का आयोजन होता है—अंग्रेजी में सरदार पटेल स्मारक व्याख्यानमाला और हिन्दी में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यानमाला । इनका उद्देश्य ज्ञानार्जन तथा समसामयिक समस्याओं के प्रति अभिरुचि जगाना है ।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यानमाला का आयोजन, 1960 से हो रहा है । इस श्रृंखला के पहले तीन वक्ता थे : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्रीमती महादेवी वर्मा और प्रोफेसर विद्या प्रकाश दत्त । श्रृंखला की चौथी कड़ी थी प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे के 'संचार और विकास' पर दो भाषण, जो इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली में 7 और 8 जनवरी, 1974 को आमंत्रित श्रोताओं के समक्ष दिए गए थे और बाद में आकाशवाणी के अखिल भारतीय कार्यक्रमों में प्रकाशित किए गए थे ।

प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के समाज वैज्ञानिक हैं । वे इस समय शिमला स्थित भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के निदेशक हैं । भारतीय ग्राम समुदायों और विकास की मानवीय समस्याओं का उन्होंने बड़ी गहराई से अध्ययन किया है और अंग्रेजी तथा हिन्दी में कई प्रामाणिक पुस्तकें और लेख लिखे हैं ।

अब इन दोनों वार्ताओं को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। हमें आशा है कि लेखक के विचार पाठकों को मनन-चिंतन के लिए उत्प्रेरित करेंगे ।

डॉ० श्याम सिंह शशि

निदेशक

संचार और विकास

(1)

मानव के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की कहानी अभी अधूरी है; उसके कई अध्यायों का कच्चा और आरंभिक रूपांकन ही हम अब तक कर पाए हैं। इस इतिहास के कुछ पक्ष ऐसे हैं, जिनमें हम केवल सतह को ही छू पाए हैं और कई ऐसे हैं, जिनमें हमारी जानकारी सिर्फ ऊपरी दो-तीन परतों तक ही सीमित है। हमें यह मालूम है कि मानव की विकास-परंपराओं का हर मुख्य मोड़ एक या अधिक क्रांतियों से जुड़ा हुआ है, पर इन क्रांतियों के स्रोतों और जटिल अंतर-संबंधों का विश्लेषण जिस बारीकी से होना चाहिए था, वह अभी तक नहीं हुआ। अब तक के इन प्रयत्नों में हम कुछ विशेष क्रांतियों में इतनी बुरी तरह उलझ रहे हैं कि मानव जीवन को अधिक व्यापक रूप से प्रभावित करने वाली और उसके आयामों को बदल देने वाली दूसरी क्रांतियों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया। उदाहरण के लिए, प्राविधिक नवाचारों से सांस्कृतिक विकास को मिलने वाली दिशा और गति के बारे में हमारी जानकारी सन्तोषजनक है, परन्तु विचार और संचार की भूमिकाओं के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। पिछले तीन दशकों में इस महत्वपूर्ण अंधेरे पक्ष पर कुछ उल्लेखनीय अध्ययन हुए हैं, जिनके कारण संचार का क्षेत्र सामाजिक विज्ञानों के एक नए सीमांत के रूप में उभरा है। संचार की प्रक्रिया तथा उसके प्रभावों और परिणामों, संभावनाओं और सीमाओं को गहराई में जाकर समझना आवश्यक है। अब तक हुए अनुसन्धान से कुछ उपयोगी अव-धारणाएं विकसित हुई हैं, किन्तु जब तक उनका परीक्षण विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में नहीं हो जाता, हम उन्हें मानक सैद्धांतिक स्थापनाओं के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। संचार का क्षेत्र अनेक बौद्धिक चुनौतियों का क्षेत्र है। इस क्षेत्र मे हमारी उपलब्धियां सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से उपयोगी प्रमाणित होंगी।

जीव-जगत में मानव अपने आपको एक विशिष्ट और उच्च कोटि का प्राणी मानता है। यह उसका दंभ है, क्योंकि उसकी कई क्षमताएं अद्वितीय हैं। यह विचार कर सकता है, वह अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है और उसने विचारों की अभिव्यक्ति के कई ऐसे माध्यम विकसित कर लिए हैं, जो उसके विचारों और चिंतन को स्थायित्व दे सकते हैं। ये योग्यताएं किसी अन्य प्राणी में नहीं हैं। इसी कारण मानव स्वयं अपने आपको मेधावी कह सकता है। संदेश दे और ले सकने की क्षमता ने मानव के सामाजिक अन्तर-संबंधों को एक विशेष स्वरूप दिया है; इस क्षमता का विकास इन संबंधों के क्षेत्र को विस्तारित और पुष्ट करता है। विचारों को स्थायित्व दे सकने की योग्यता जिस गति से विकसित होती गई, उसी गति से उसकी संस्कृति की विविधता और जटिलता भी बढ़ती गई। सीमित संचार-साधनों के काल में मानव समाज छोटी-छोटी स्वतंत्र इकाइयों में खंडित रहा। इसके विपरीत, जन-संचार के माध्यमों के अभूतपूर्व विकास ने समसामयिक विश्व को संकुचित कर एक बड़ा-सा गांव बना दिया है। इन ध्रुवांतों के बीच की स्थितियां भी अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उनके प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों ने मानव के सामाजिक गठन और उसकी जीवन-दृष्टि को नए मोड़ और नए रूप दिए, बल्कि संचार माध्यमों की हर क्रांति मानव जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाई है। इन परिवर्तनों का सूक्ष्म विश्लेषण और मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ, जो प्रयत्न हुए हैं, वे अपने आप में महत्वपूर्ण होते हुए भी पूरी तरह सन्तोषजनक नहीं हैं। स्थिति यह है कि प्रश्न अधिक उठे हैं, पर उनके उत्तर कम मिले हैं। इन प्रश्नों का उठना ही स्वयं एक उपलब्धि है, क्योंकि वे खोज-यात्रा की दिशा निर्धारित करते हैं।

क्या संदेश दे और ले सकने की क्षमता केवल मानव तक ही सीमित है? इस प्रश्न का निर्णयात्मक उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। वह है—नहीं। जैविकीय संचार-व्यवस्था पर की गई पुरानी खोजों के आधार पर यह उत्तर दिया गया था, पर नई खोजों ने प्रक्रिया के कई अनबूझे रहस्यों को उद्घाटित किया है।

जीव-रचना में ही एक आंतरिक संचार-प्रक्रिया निहित है, कोशिकाएं स्वयं एक दूसरे को संदेश देने में समर्थ हैं। इन तथ्यों का सूक्ष्म विश्लेषण संचार

अध्ययनों की एक स्वतन्त्र शाखा—कोशिकीय संचार—द्वारा किया गया है । जीवित कोशिकाएं हार्मोनों और तंत्रिका द्वारा संवाद करती हैं । यह संचार उस सूचना-संकलन पर आधारित होता है, जो न्यूक्लीय अम्ल के अणुओं में निहित होता है । ये सूचनाएं तीन सामान्य वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—आनुवंशिक, उपापचयी या मेटाबोली और तंत्रिकीय । प्रत्येक वर्ग के संवाद (और संचार-प्रक्रियाएं) अपनी स्वतन्त्र संहिताओं द्वारा अनुशासित होते हैं । यह विषय अपने आप में बड़ा रोचक है, और इस क्षेत्र में होने वाले अनुसन्धानों से जैविकीय प्रक्रियाओं के कई रहस्यपूर्ण पक्ष स्पष्ट हुए हैं । इस क्षेत्र में होने वाले सम-सामयिक अनुसन्धान से जो संभावनाएं उभरी हैं, वे और भी महत्वपूर्ण हैं । आप शायद यह सुनकर चौंकें कि कोशिकीय संचार के क्षेत्र में होने वाले अनुसन्धान हमें धीरे-धीरे एक गंभीर दार्शनिक समस्या के हल की ओर ले जा रहे हैं । वह समस्या है—यथार्थ और मन का संबंध । उत्तर से हम अभी भी दूर हैं—उसे पाने के प्रयत्न जिस योजनाबद्ध ढंग से हो रहे हैं और उनमें अब तक जो सफलताएं मिली हैं, उनसे बड़ी आशा बंधती है ।

संवाद मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीव भी कर सकते हैं । उनके संवाद के तीन प्रमुख माध्यम हैं—रासायनिक द्रव्यों का स्राव, अंग संचालन या गतियां और ध्वनियां । स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण लें । न्यूगिनी में उड़ने वाली गिलहरी से मिलता-जुलता और लगभग उसी आकार-प्रकार का एक प्राणी है—शुगर ग्लाइडर । रासायनिक स्रावों से वह अपना संदेश अपनी जाति के दूसरे सदस्यों तक पहुंचा देता है । इस प्राणी के सिर के सामने के भाग में एक ग्रन्थि होती है ? इस ग्लैण्ड का स्राव नर और मादा को एक दूसरे से जोड़ देता है । उसकी गंध से नर अपनी मादा को पहचानता है, मादा नर को । साथ ही, जाति के अन्य सदस्यों के लिए यह गंध चेतावनी भी होती है, बने हुए जोड़ों को तोड़ने के विरुद्ध । नर के पैरों, वक्ष और हाथों के समीप अन्य ग्रन्थियां होती हैं, जिनका स्राव और उसकी लार उसके क्षेत्र को सीमांकित कर देते हैं । इस गंध से वे अपने क्षेत्र को पहचानते हैं ; और जाति के दूसरे सदस्यों की क्षेत्र-सीमाओं को जानकर उनसे दूर रहते हैं । दूसरा उदाहरण, संचार की दृष्टि से अच्छी तरह जानी-परखी गई मधुमक्खी का है । मधुमक्खी के शरीर से निकले अलग-अलग रासायनिक द्रव्य और उनकी गंध जाति के लिए भिन्न-भिन्न संकेतों का अर्थ रखते हैं, उनकी रानी जब अपनी सुहागरात

की उड़ान पर जाती है, तब वह ऐसी भाप छोड़ती जाती है, जिसकी गंध पुंमक्षिका —नर—को कामातुर कर उनकी ओर आकृष्ट करती है। उनके एक छत्ते की गंध दूसरे छत्ते की गंध से भिन्न होती है; मधुमक्खियां 'अपने' और 'दूसरे' छत्तों का अन्तर इस गंध से सरलतापूर्वक समझ लेती हैं। अंग-संचालन और गति द्वारा संदेश पहुंचाने के भी अनेक उदाहरण मधुमक्खियों में मिलते हैं। उनका 'वैगल डांस' जैविकी और सामाजिक विज्ञानों में समान रूप से चर्चित रहा है। 1945 में जर्मन जीव-वैज्ञानिक कार्ल फ़ान फ़्रिश ने इस नृत्य की अन्तर्निहित संकेत-संहिता का विश्लेषण प्रस्तुत किया था। श्रमिक मक्खी कभी-कभी अपने छत्ते के समीप यह नृत्य करती है। इसके दो अर्थ हो सकते है। पहला यह कि उसने कोई नया खाद्य भंडार खोजा है और दूसरा यह कि उसे नया छत्ता बनाने के लिए कोई उपयुक्त स्थान दिखा है। इस नृत्य में वह एक सेकिंड में तेरह से पंद्रह बार उड़कर अंग्रेजी 8 का आकार बनाती है। यह क्रम कई बार दुहराया जाता है। बीच-बीच में वह सीधी भी उड़ती है। नृत्य गंतव्य की ओर संकेत करता है, सीधी उड़ान की सीमा छत्ते और गंतव्य की दूरी का बोध कराती है। साथ ही अपनी सखियों को आकृष्ट करने के लिए वह पंखों से एक विशेष प्रकार की ध्वनि भी करती है।

कीट-पतंगों से लेकर बड़े-बड़े पशुओं तक में अंग-संचालन की खास शैलियां और विशेष मुद्राएं कतिपय स्पष्ट अर्थों की अभिव्यक्ति करती हैं। क्रोध, भय, संतोष, काम-पीड़ा आदि की मुद्राएं आसानी से समझी जा सकती है। ये भाव कई प्राणी ध्वनि के माध्यम से भी व्यक्त करते हैं। बहुधा अंग-संचालन और ध्वनियां इन दोनों का प्रयोग साथ-साथ संकेत और संदेश देने के लिए किया जाता है। यहां यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अन्य प्राणियों में संचार के लिए किए गए प्रदर्शनों की संख्या बहुत सीमित होती है। रीढ़ वाले सामाजिक प्राणियों में इस प्रकार के प्रदर्शन 30–35 से अधिक नहीं होते; कई प्राणियों में उनकी संख्या इससे भी कम होती है। सामाजिक प्राणियों की संचार-संहिता अधिक जटिल और विकसित होती है, पर मनुष्य की तुलना में वह नगण्य प्रतीत होती है। उसकी शक्ति कुछ सीमित अर्थ में अपने सीमित प्रतीकों से व्यक्त करने की होती है।

मानव की संचार-शक्ति के विकास की तुलना में अन्य जीवों में यह शक्ति बहुत ही अल्प विकसित है। उनके पास न मौखिक भाषा है, न उसका लिखा

हुआ रूप, मनुष्य की संकेत संहिता में वे सभी तत्व हमें आज भी मिलते हैं, जो अन्य जीवों को अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से उपलब्ध हैं; मानवीय प्रयत्नों से अन्य प्राणी एक सीमा तक शब्दों का अर्थ समझने लगते हैं। कुछ शब्दों की ध्वनियां कुत्तों के लिए स्पष्ट अर्थ रखती हैं। प्रयोगों से यह प्रमाणित हुआ है कि शिपांजी को न केवल शब्दों या प्रतीकों का अर्थ सिखाया जा सकता है, उन्हें शब्दक्रम और पद-विन्यास के नियम भी सिखाए जा सकते हैं। इतना ही नहीं, वे स्वयं अपनी ओर से छोटे-छोटे प्रश्नों और वक्तव्यों की रचना भी कर सकते हैं। केलिफोर्निया युनिवर्सिटी के डेविड प्रैमेके ने अपने प्रयोगों में सारा नाम की एक शिपांजी को 128 शब्द सिखाए, जिनमें मनुष्यों और शिपांजियों के 8 नाम, 12 क्रियाएं, 6 रंग, 21 खाद्य-पदार्थ और विविध प्रकार की वस्तुएं, संबोध, विशेषण आदि थे। सारा स्वयं बोल नहीं सकती थी, पर मनुष्य द्वारा बोली गई भाषा को एक सीमा तक समझ अवश्य लेती थी। भाषा के अतिरिक्त अन्य संकेतों और चिह्नों का उपयोग भी उसे अर्थ समझाने के लिए किया जाता था। वह स्वयं इन चिह्नों और प्रतीकों से अपनी बात कह सकती थी। सारा की प्रगति और उपलब्धियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनसे मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों की संचार-क्षमता के बारे में हमारी मान्यताएं बहुत कुछ बदली हैं। मानव से जैविकीय रूप से निकट संबंधित प्राणी भी, सीमित रूप में ही सही, प्रतीकों से संदेश ग्रहण कर सकते हैं और थोड़े से संदेश दे भी सकते हैं। इस संदर्भ में हमें यह याद रखना चाहिए कि सारा और दूसरे शिपांजियों ने भाषा मनुष्य के कठिन और प्रयोगात्मक प्रयासों से सीखी। इन प्रयत्नों की सफलता सीमित थी, क्योंकि वे बहुत थोड़े से शब्द और पद-विन्यास ही शिपांजियों को सिखा सके। बुद्धिमत्ता के आधार पर चुने गए शिपांजियों का प्रशिक्षण बड़े कृत्रिम परिवेश में हुआ था और अपने प्रशिक्षण के आधार पर वे मनुष्य से संवाद कर सकते थे, समजाति प्राणियो से नहीं। मनुष्य अपनी भाषा समजाति प्राणियों के सिखाने और सामाजिक वातावरण से सीखता है। सारा जैसी प्रशिक्षित विदुषी भी अन्य शिपांजियों को भाषा-ज्ञान नहीं दे सकती थी। यह भी संभव था कि मनुष्य के संपर्क से दीर्घकाल तक अलग रखे जाने पर सारा और दूसरे शिपांजी भाषा पर अपना अधिकार खो बैठते। संभावनाओं के धरातल पर संचार-शक्ति पर मानव का एकाधिकार भले ही न हो, पर भाषा को जितनी सम्पन्नता वह दे सका है, उतनी कोई अन्य प्राणी नहीं।

अब एक प्रश्न और उठता है। भाषा और प्रमुखतः उसके आधार पर संचार-शक्ति का विकास मानव ही क्यों कर सका ? इस प्रश्न का सही उत्तर पाने के लिए एक ओर तो हमें मानव की जैविकीय रचना की विशेषताओं को समझना होगा और दूसरी ओर उन सांस्कृतिक कारकों की ओर भी ध्यान देना होगा उसकी संचार-क्षमता में सम्पन्नता आई। विकास-क्रम में जब मानव का उद्भव हुआ, उसकी मस्तिष्क रचना विशेष प्रकार की थी। सीधे खड़े हो सकने की योग्यता ने इस मस्तिष्क रचना को विकास की एक निश्चित दिशा दी। मानव तार्किक और बीजगणितीय मनोवृत्ति के साथ जन्मा था। संस्कृति के विकास के हर चरण के साथ उसने इन मनोवृत्तियों और उनकी अभिव्यक्ति को सम्पन्नता और पूर्णता देने का प्रयत्न किया। इस तरह वह कार्य-कारण संबंध स्थापित करने के आरम्भिक प्रयत्नों में सफल हुआ और प्रतीकों की बोधगम्यता विकसित कर उसने अपने चिन्तन और अभिव्यक्ति का क्षेत्र विस्तारित किया। इस क्षेत्र में उसकी सफलता संदिग्ध होती, यदि प्रकृति ने उसे ऐसा कण्ठ न दिया होता, जो ध्वनियों को भाषा का रूप देने में सक्षम था। विचार और अभिव्यक्ति एक दूसरे के सहारे बढ़ते हैं। मानव का मस्तिष्क तार्किक था ; उसमें विचार कर सकने की योग्यता थी। साथ ही उसके कण्ठ की रचना ऐसी थी कि वह भाषा विकसित कर इन विचारों को अभिव्यक्त कर सके। ये दोनों क्षमताएं एकाएक ही विकसित नहीं हुईं। उनके विकास की प्रक्रिया में बहुत समय लगा। पर जब वे विकसित हुईं, तो मानव के सामाजिक-जीवन में एक मूलभूत परिवर्तन हुआ। समाज संचार पर आश्रित होने लगा, 'संवाद की स्थिति में समूह' को समाज का पर्यायवाची माना जाने लगा। लिपि के अभाव में संचार का क्षेत्र सीमित था। मौखिक संवाद बहुत बड़े समूह के साथ संभव नहीं था। इस तरह के संवाद को स्थायित्व देना भी कठिन था, यद्यपि इसके प्रमाण खोजना आवश्यक नहीं है कि मौखिक परम्परा के न केवल लोक-साहित्य को जीवित रखा, उसने शास्त्रीय साहित्य को भी एक पीढ़ी से दूसरी तक पहुंचाथा। यह क्रम कई पीढ़ियों तक चलता रहा। लिपि के आविष्कार के बाद स्थायित्व का माध्यम बदल गया, यद्यपि स्मरण-शक्ति की भूमिका इस स्थिति में भी महत्वपूर्ण रही। शब्द प्रतीक होते हैं। उन्हें मौखिक से लिखित रूप देना मनुष्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। मनुष्य की तीक्ष्ण और केन्द्रित हो सकने वाली दृष्टि उसके अंगूठे की रचना और अंगूठे व शेष उंगलियों के सहयोग से लिपि का आविष्कार और प्रचलन

हो पाया। लिपि ने मौखिक भाषा का स्थान नहीं लिया, केवल उसे विस्तारित किया। प्राविधिक विकास की विभिन्न स्थितियों में क्रमशः संचार-क्षेत्र का विस्तार होता रहा।

भाषा का विकास मानवीकरण की प्रक्रिया का एक अंग था। प्राइमेट वर्ग की जिस शाखा ने मानव बनने की राह अपनाई, उसने पूर्ण मानव बनने के पहले ही संस्कृति के कुछ तत्वों को विकसित कर लिया था। इन तत्वों में प्रतीक-व्यवस्था भी थी, जिसने उसे अभिव्यक्ति की सीमित शक्ति दी। मानव के अध्येताओं को एक भी ऐसा समूह नहीं मिला जो भाषाविहीन हो। ऐसे समूह अवश्य मिले हैं, जिनका शब्द भंडार अढ़ाई-सौ, तीन-सौ शब्दों से अधिक नहीं था, उनसे भी अधिक ऐसे जिनकी शब्द संख्या सात-आठ सौ से ऊपर नहीं थी। अमूर्त चिंतन और सूक्ष्म अभिव्यक्ति के लिए यह संख्या भले ही थोड़ी लगे, पर इस सीमित शब्द संख्या में भी सांस्कृतिक संचार की अद्‌भूत क्षमता थी। मौखिक संस्कृति ने मानव जीवन के आयाम बदले और परम्पराओं को स्थायित्व देने में आश्चर्यजनक सफलता पाई।

लिपि का आविष्कार संचार के क्षेत्र में दूसरी बड़ी क्रांति थी। ध्वनि पर अवलंबित लिपि के विकास के पूर्व मानव ने भाषा के अतिरिक्त अभिव्यक्ति के कई अन्य माध्यमों से प्रयोग किए थे। चित्र-लिपि या 'पिक्टोग्राफी' इसी तरह का एक प्रयोग था। यह लेखन विधि चित्रों की एक श्रृंखला द्वारा किसी घटना या स्थिति का स्वरूप प्रस्तुत करती थी। चित्र-लिपि भाषा से जुड़ी नहीं होती, इसलिए उसकी मौखिक अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में संभव होती है। आवश्यक होता है चित्र को समझना। प्रागैतिहासिक मानव ने संसार के विभिन्न भागों में इस लेखन शैली का प्रयोग किया। पिक्टोग्राफी के कुछ रूपों ने विकसित होकर 'आइडियोग्राफी' का रूप लिया। यह चित्र-लिपि का संवर्धित रूप था और उसमें स्थितियों और घटनाओं के प्रस्तुतिकरण के साथ-साथ अमूर्त विचारों की अभिव्यक्ति की सीमित शक्ति भी थी। प्रतीक अब केवल वस्तुओं और स्थितियों का चित्रण नहीं करते थे, वे उनसे संबंधित विचारों और संबोधों को भी अभिव्यक्त करते थे। चित्र-लिपि में छोटा-सा वृत्त सूर्य का प्रतिनिधित्व करता था; आइडियोग्राफी में, संदर्भ के अनुसार, उससे ताप, प्रकाश और दिन का बोध भी होने लगा। इस लिपि में भी प्रस्तुत प्रतीक और उसके बोले हुए

में प्रत्यक्ष संबंध नहीं था ; चित्र-लिपि की तरह यह भी भाषा-संबद्ध नहीं थी। ध्वनि पर आधारित लिपियों के विकास के पहले कई संक्रमणकालीन लिपियां आईं, जो मूलतः आइडियोग्राफी थीं, पर जिनमें धीरे-धीरे ध्वनि आधारित तत्व सम्मिलित हो रहे थे। प्राचीन मेसोपोटामिया और क्रीट की तथा हिट्टीआइट लिपियां इस वर्ग की हैं। लिपियों के विकास के अगले चरण और भी महत्वपूर्ण थे। एक ओर 'लोगोग्राफी' का विकास हुआ, जिसमें प्रत्येक शब्द के लिए एक स्वतंत्र चिह्न था। इस लिपि को 'शब्द लेखन' भी कह सकते हैं। दूसरी धारा थी ध्वनियों के आधार पर लिपियों के विकास की, जिसका चरम उत्कर्ष अक्षरों के आविष्कार में हुआ। इन लिपियों ने लेखन के स्वतंत्र रूप का अंत कर उसे केवल भाषा की अभिव्यक्ति का एक माध्यम बना दिया।

इस क्रांति के प्रभाव बड़े व्यापक थे। लिपिविहीन भाषाओं ने ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का वहन किया था ; उनमें साहित्य के विभिन्न रूपों की रचना हुई थी और सूक्ष्म दार्शनिक चिंतन भी किया गया था। उस साहित्य को स्थायित्व देने में कठिनाइयां थीं। लिपि ने उन्हें बड़ी मात्रा में दूर किया। पत्तों, मिट्टी की पतली ईंटों, पत्थर, चमड़े, वस्त्र आदि पर लिखकर मनुष्य ने अपने संचित ज्ञान को आने वाली पीढ़ियों के लिए बचाने का यत्न किया। लिपि एक रहस्यमय और चमत्कारी शक्ति थी, जिस पर अधिकार रखने वाले थोड़े से लोगों को समाज में ऊंचा स्थान मिला। इस तरह ज्ञान एक छोटे से वर्ग के हाथ में आ गया, जिसने उसका उपयोग बहुत कुछ अपने हितों में किया। यह दूसरी बात है कि आगे चल कर इसी ज्ञान का व्यापक प्रसार हुआ।

यह स्थिति संचार की चौथी क्रांति ने बदली जिसे कागज और मुद्रण की संयुक्त क्रान्ति मानना उचित होगा। कागज का आविष्कार मुद्रण के आविष्कार के बहुत पहले हो गया था, पर क्रांतिकारी सामाजिक परिणाम उसी समय स्पष्ट हुए जब कागज और छपाई का मिलन हुआ। कागज के आविष्कार का श्रेय चीन के साई लुन को दिया जाता है, जिसने ईसा बाद सन् 105 में वृक्षों की कूटी हुई छाल, सन, पुराने कपड़े और पुराने मछली के जालों के मिश्रण से कागज बनाया। पांच सौ वर्षों तक यह शिल्प चीन में ही रहा। सातवीं सदी के आरम्भ में यह कला जापान पहुंचीं और बौद्ध भिक्षुओं ने मलबरी वृक्ष की छाल से कागज बनाना आरम्भ किया। इसी देश में सन् 770 में सांचों से मुद्रण आरम्भ

हुआ। साम्राज्ञी शोटोकु की आज्ञा से दस लाख प्रार्थना पत्रक छापे गए। इस योजना को पूरा करने में 6 वर्ष का समय लगा। ज्ञान को सर्वसुलभ बनाने की क्रिया का आरम्भ इसी प्रकार के प्रयत्नों से हुआ। धीरे-धीरे छपाई के प्राथमिक रूप संसार के दूसरे भागों में भी पहुंचे। कागज बनाने की कला वहां पहले ही जा चुकी थी। चल-टाइप के आविष्कार ने मुद्रण को नया स्वरूप दिया। इसका श्रेय जर्मनी के गटेनबर्ग को दिया जाता है, जिसने सम्भवतः सन् 1400 और 1468 के बीच चल-टाइप का आविष्कार किया। उसकी 42 पंक्तियों की बाईबिल—गटेनबर्ग बाईबिल—को कई विद्वान दुनिया की पहली छपी हुई पुस्तक मानते हैं। वैसे यह दावा दूसरी पुस्तकों के लिए भी किया गया है। संभवतः सन् 1300 के आसपास छपी एक कोरियाई धार्मिक पुस्तक अब तक उपलब्ध पुस्तकों में सबसे पुरानी हो। इस पुस्तक में चल-टाइप का उपयोग नहीं हुआ था।

मुद्रण के आविष्कार से पुस्तकों और समाचार पत्रों के प्रकाशन का रास्ता खुला। इस तरह ज्ञान के प्रसार और स्थायित्व की संभावनाएं बढ़ीं। ज्ञान अब तक एक छोटे से वर्ग के हाथ में था। पुस्तकों और समाचार पत्रों ने उसका दायरा बढ़ाया और वह क्रमशः सर्वसुलभ होने लगा। मुद्रण की क्रांति विचारों की क्रांति की शुरुआत थी।

संचार के क्षेत्र में इसके बाद की क्रांतियां अपेक्षाकृत नई हैं। उदाहरण के लिए रेडियो ने अभी अपनी पहली जन्म-शताब्दी नहीं मनाई। आपको शायद याद हो कि मारकोनी ने सन् 1895 में बिना तार के संकेत भेजने और उन्हें ग्रहण करने का सफल प्रयोग किया था और 1896 में लन्दन में रेडियो का पेटेंट लिया था। इंग्लैंड के बेयर्ड और अमरीका के जेनकिंस ने 1923 में टेलीविजन के माध्यम से चित्र सम्प्रेषण का एक कच्चा प्रयास किया था, जिसके दो वर्ष बाद 1925 में उन्हें ऐसा कर सकने में अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली। तब से अब तक संचार की इन विधाओं ने आश्चर्यजनक प्रगति की है।

इस संक्षिप्त-सी रूपरेखा में संचार के अन्य कई साधनों का उल्लेख नहीं किया गया, जैसे तार, टेलीफोन, कैमरा, टेप रिकार्डर आदि। जिनकी चर्चा की गई है, उनमें भी प्रत्येक दशक में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं और वे अपने प्राथमिक रूपों से बहुत अधिक विकसित हो चुके हैं। आज प्रविधि और संचार एक दूसरे

के अविभाज्य अंग बन गए हैं और मानव की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को दिन-प्रतिदिन विस्तारित करते जा रहे हैं। सम-सामयिक समाज में संचार ने एक नई महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका ग्रहण कर ली है।

आइए, अब हम संचार की सामाजिक भूमिका पर संक्षेप में विचार करें। संचार सामाजीकरण का प्रमुख माध्यम है। संचार द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती हैं। संचार की विभिन्न विधाओं के बिना सामाजिक निरंतरता बनाए रखने की कठिनाइयों का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। सामाजीकरण की प्रत्येक स्थिति और उसका हर रूप संचार पर आश्रित है। मनुष्य जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी तब बनता है, जब वह संचार द्वारा सांस्कृतिक अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार-प्रकारों को आत्मसात कर लेता है। विसामाजीकरण (अथवा पहले अपनाई गई रीतिनीति का अवमूल्यन) और पुनर्सामाजीकरण (या उनके स्थान पर नई मान्यताओं और मूल्यों का ग्रहण)—दोनों के लिए संचार आवश्यक होता है। इस तरह सांस्कृतिक निरंतरता और परिवर्तन—समाज की दो अनिवार्य प्रक्रियाएं—संचार पर आधारित होती हैं।

संचार के साधनों का विकास और उसके संदेशों की सुलभता यदि एक ओर सामाजिकता की परिभाषा को प्रभावित करते हैं, तो दूसरी ओर उनके द्वारा सामाजीकरण की प्रक्रिया में अनेक मूलभूत परिवर्तन होते हैं। जब मनुष्य के पास केवल मौखिक संचार की सीमित शक्ति थी, व्यक्ति का सामाजीकरण परिवार और प्राथमिक समूह के सीमित दायरे में होता था। लिपि के आविष्कार और प्रसार के बाद एक संस्थागत क्रांति हुई। सिखाने का काम स्कूल जैसी संस्थाएं भी करने लगीं। इस तरह सामाजीकरण का स्वरूप बदला; व्यक्ति को दो भिन्न धाराओं से संदेश मिलने लगे। परिवार और अन्य प्राथमिक समूहों का कुछ उत्तरदायित्व इस क्षेत्र में अब भी रहा, परन्तु नई संस्थाओं की साझेदारी उन्हें स्वीकार करनी पड़ी। आश्रमों और पाठशालाओं में हाथ से लिखी पोथियों का उपयोग होता था। अपनी सीमित संख्या और दुर्लभता के कारण ये पुस्तकें विस्मय और श्रद्धा की मिलीजुली भावना को जन्म देती थीं। मुद्रण के आरम्भ के बाद पुस्तकें सहज ही उपलब्ध होने लगीं। उनका रहस्य और उनकी पूजनीयता धीरे-धीरे कम होने लगी। परिवार, प्राथमिक समूह, और स्कूल के अतिरिक्त सुलभ पुस्तकें सीखने का एक वैकल्पिक साधन बनीं। जन-संचार के साधनों ने

संदेश-वाहनों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि की। आज के संदर्भ में सामाजीकरण के स्रोतों के संबंध में निश्चयात्मक ढंग से कुछ कह सकना कठिन हो गया है। परिवार, सम-रुचि समूह और स्कूल के अतिरिक्त दैनिक अखबार, पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन भी अपने संदेशों से उभरते व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं। अलग-अलग स्रोतों से आए संदेश हमेशा एक-दूसरे के पूरक नहीं होते। वे एक-दूसरे के विरोधी भी हो सकते हैं। संचार संदेश का यह अन्तर्विरोध यदि एक ओर कुछ समस्याओं को जन्म देता है, तो दूसरी ओर उससे ज्ञान-विज्ञान के नए सीमांतों की खोज की प्रेरणा भी मिलती है। यहां यह स्मरण रखना आवश्यक है कि संचार परम्परागत मान्यता को केवल पुष्ट ही नहीं करता; उनके संबंध में संवाद का आरम्भ कर उनका मूल्यांकन करने की स्थिति को जन्म देता है। समय की कसौटी पर कुछ मान्यताएं खरी उतरती हैं, पर अनेक इस प्रक्रिया में अवमूल्यित हो जाती हैं और उनके स्थान पर नए प्रतिमान उभरते हैं, नई मान्यताएं प्रतिष्ठित होती हैं।

संचार व्यवस्था का दूसरा मुख्य उत्तरदायित्व है सामाजिक गतिविधियों की निगरानी करना। जब संचार का आधार केवल मौखिक था (या जिन समाजों में संचार अभी भी मुख्यतः मौखिक है) उनमें भी वह केवल परम्परा का वहन ही नहीं करता; वह सामाजिक आलोचना को भी स्वर देता है और इस रूप में सामाजिक नियंत्रण का साधन बनता है। जन-संचार के साधन भी, अपनी शैली में यही, कार्य करते हैं। इस तरह हम पाते हैं कि एक ओर संचार-व्यवस्था यदि शिक्षक का काम करती है तो दूसरी ओर उसे सामाजिक महानिरीक्षक का उत्तरदायित्व भी ग्रहण करना पड़ता है।

कोई भी समाज-व्यवस्था अपने आप में पूर्ण नहीं होती, उनके पास हर सामाजिक प्रश्न और समस्या का उत्तर नहीं होता। सामाजिक और मानसिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन नए प्रश्नों और नई समस्याओं को जन्म देते रहते हैं, जिनके समाधान परम्परा की परिधि में पा सकना कभी-कभी कठिन होता है। प्रत्येक समाज के जीवन में ऐसी घड़ियां आती हैं जब उसे सामाजिक लक्ष्यों और उन्हें पाने के साधनों के बारे में नए सिरे से न्यूनतम सामाजिक सहमति आवश्यक होती है। सहमति का वातावरण निर्मित करने में संचार का योगदान महत्वपूर्ण होता है। जन-संचार के माध्यमों से की गई चर्चा से स्थितियों और समस्याओं

को उनके व्यापक सामाजिक परिदृश्य में समझने में सहायता मिलती है और उनके विस्तार, स्वरूप और आयामों के संबंध में सामूहिक विवेक उत्पन्न होता है। यह विवेक इन समस्याओं के संभव हल के संबंध में सामाजिक सहमति और प्रयत्नों को जन्म देता है।

संचार का चौथा महत्वपूर्ण कार्य है व्यक्ति और समाज के संज्ञानात्मक मानचित्र का विस्तार। नई सूचनाएं मानसिक क्षितिजों को विस्तारित करती हैं और आकांक्षाओं के धरातल को उठाती हैं। उनके कारण नई अभिरुचियां उत्पन्न होती हैं, समस्याओं और उनके संभव समाधानों पर ध्यान केन्द्रित होता है और प्रयोग की प्रवृत्ति जाग्रत होती है।

संचार के दो और कार्यों का उल्लेख आवश्यक है। पहला है— मनोरंजन, जन-संचार के कतिपय साधनों का उपयोग मुख्यत: मनोरंजन के लिए ही किया जाता है। इस कारण जन साधारण की दृष्टि में वे मनोविनोद के साधन-मात्र होकर रह गए हैं; नए सिरे से उनका शैक्षिक उपयोग करने में कठिनाइयों का अनुभव हो सकता है। वैसे मनोरंजन के बहुत थोड़े स्वरूप ही ऐसे हैं, जिनका उद्देश्य मनोरंजन-मात्र हो और जिनमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, प्रगट अथवा अन्तर्निहित रूप से दूसरे उद्देश्य घुले-मिले न हों। नानी की कहानियों और कठपुतलियों के नाच तक में एक सबक होता था। आज की कथा में सशक्त सामाजिक आलोचना संभव है। सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन के मनोरंजन के उद्देश्य से प्रस्तुत किए गए कार्यक्रम अनेक ऐसे संदेशों का वहन कर सकते हैं, जिनकी कल्पना संभवत: उनके प्रस्तुतकर्त्ताओं को भी न हो। मानस की गहराई में उनके प्रभावों का विश्लेषण अब होने लगा है। इस नई समझ का उपयोग अधिकांशत: व्यावसायिक हितों की दृष्टि से किया गया है। सामाजिक नव-निर्माण और विकास के क्षेत्र में उसकी संभावनाओं का सार्थक उपयोग किया जा सकता है, पर अभी बड़े पैमाने पर ऐसा किया नहीं गया।

दूसरा, संचार-क्षमता और संचार-साधन दोनों में सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने का गुण है। व्यक्ति चाहे प्रभावशाली वक्ता हो या मनोरंजक ढंग से कहानी कहने वाला, कुशल अभिनेता हो या सशक्त लेखक, अपनी विशिष्ट संचार-विधा में उसकी क्षमता उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाती है। जन-संचार के नए साधन व्यक्ति

और विचार दोनों का सामाजिक आदर बढ़ा या घटा सकते हैं। इस युग के बड़े-बड़े शक्ति सामंत भी समाचार पत्रों रेडियो और टेलीविजन की इस शक्ति को स्वीकार करते हैं और उसके सामने झुकते भी हैं। नई अभिवृत्तियों और मूल्यों को पुरस्कृत कर संचार के साधन सामाजिक नव-निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

सामाजिक विकास और आधुनिकीकरण के संदर्भ में यदि संचार के इन कार्यों पर हम विचार करें तो इस क्षेत्र में उनकी कई संभावनाएं स्पष्ट होंगी। संचार-साधनों को उचित दिशा देकर नए मूल्य प्रतिष्ठित कराए जा सकते हैं, समाज को परम्परा से प्रगति की ओर मोड़ा जा सकता है। उनकी सहायता से जन-मानस को आधुनिकीकरण के लक्ष्यों और कार्यक्रमों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। जन-संचार के साधन उनके सम्मुख नए जीवन का एक आकर्षक विकल्प प्रस्तुत कर उन्हें जड़ता का मार्ग छोड़ सक्रियता की राह अपनाने की प्रेरणा दे सकते हैं। जाग्रत जनमत प्रगति की अनिवार्य शर्त है, और इसे तैयार करने में जन-संचार के साधनों की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका है। मनोरंजन के साथ-साथ विकास का संदेश बड़े सशक्त ढंग से जन-साधारण तक पहुंचाया जा सकता है।

इन प्रभावशाली संभावनाओं के साथ संचार की सीमाओं पर ध्यान रखना भी आवश्यक है। संचार एक अस्त्र है; उसका उपयोग हो सकता है, दुरुपयोग भी। मूल प्रश्न है: यह अस्त्र किसके हाथ में है? उस पर नियंत्रण करने वालों के सामाजिक लक्ष्य और न्यस्त हित क्या हैं? क्या उनमें इन साधनों का कल्पनाशील और सार्थक उपयोग करने की क्षमता है? दूसरे शब्दों में इन साधनों का उपयोग कौन, किस उद्देश्य से, और कितनी क्षमता से कर रहा है? कुछ हाथों में यदि संचार प्रगति का प्रेरक बन सकता है, तो दूसरे हाथ उसे परम्परा का पोषक बना सकते हैं। उनका उपयोग देश का ध्यान महत्वपूर्ण समस्याओं से हटा कर अर्थहीन प्रश्नों में उलझाए रखने के लिए भी किया जा सकता है। इन संचार-साधनों पर गाई हुई लोरियां राष्ट्र को सुला भी सकती हैं। कभी-कभी संचार प्रगति का स्थान ले लेता है, वास्तविक प्रगति कम होती है, पर उसे और काल्पनिक प्रगति को संचार के साधन आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि जनता शब्दों के मोहक इन्द्रजाल में दिशा-भ्रमित हो जाती है। इसके विपरीत अयोग्य संचारकर्त्ता आशायुक्त

संदेशों को कल्पनाहीन तथा अनाकर्षक ढंग से प्रस्तुत कर उनकी हत्या कर सकते हैं। संचार वस्तुतः दो-धारों वाला अस्त्र है, जिसका उपयोग बड़ी ही सावधानी से होना चाहिए।

अंत में मैं कुछ अन्य नैतिक प्रश्नों का उल्लेख करूंगा जो संचार-साधनों के विकास और उपयोग के साथ अविभाज्य रूप से जुड़े हैं।

आज का युग संदेश-विस्फोट का युग है। अनेक धाराओं से अनेक प्रकार के संदेशों की बौछार सम-सामयिक मानव पर हो रही है। उसकी व्यक्तिगत विचार-प्रक्रिया पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है? यह प्रश्न विचारणीय है। अब तक हुए अनुसंधानों के निष्कर्ष चिंताजनक हैं। आज का मानव वाह्य निर्देशित होता जा रहा है; वह अपनी विचार क्षमता पर कम भरोसा करता है, उन विचारों पर अधिक जो उसे जनसंचार के साधनों से मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, संदेश विचार और चिंतन का स्थान ले रहे हैं। समस्या का एक और पहलू उल्लेखनीय है। आज का मानव अपने स्वयं-प्रतिमान जन-संचार द्वारा पुरस्कृत प्रतिमानों के आधार पर बनाता है और अपनी उपलब्धियों और असफलताओं का लेखा-जोखा जन-संचार द्वारा समर्थित मानदण्ड से करता है। निश्चित रूप से संस्कृति में रूढ़ दृष्टिवाद पनप रहा है—पुरानी या नई लीकों पर चलने की वृत्ति बढ़ रही है, उनसे हट कर स्वतंत्र विचार और व्यवहार का आग्रह घट रहा है। क्या ये चिह्न शुभ हैं?

सामाजिक धरातल पर समस्या का एक और पक्ष विचार योग्य है। समुदाय को एक साथ अनेक संदेश मिलते हैं, इनमें न सामंजस्य होता है, न तारतम्य। कई संदेश परस्पर विरोधी होते हैं। यह स्थिति संज्ञानात्मक भ्रम को जन्म देती है। जो कहा जा रहा है, उसमें किसी पर विश्वास किया जाए और किस पर नहीं? इस कारण निश्चय की प्रक्रिया भी गड़बड़ा जाती है। समृद्ध और असमृद्ध दोनों प्रकार के समाजों ने इस समस्या का बड़ी तीव्रता से अनुभव किया है।

सूचनाओं का विस्फोट एक व्यावहारिक समस्या को भी जन्म देता है। प्रत्येक सूचना की कुछ-न-कुछ सामाजिक प्रतिक्रिया होती है, कभी-कभी ये प्रतिक्रियाएं समय के पर्याप्त व्यवधान के बाद व्यक्त होती हैं। शासन-तंत्र सूचनाओं के प्रभावों और परिणामों का, अल्पकालिक और दीर्घकालीन संदर्भों में मूल्यांकन

किस तरह करे ? संचारकर्ता अपने संदेश पहुंचाने में कुशल होता है, पर उसे अपने पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों के प्रतिक्रिया संदेश उतनी आसानी से नहीं मिलते । अनियंत्रित संदेश प्रशासन के लिए कई समस्याएं पैदा करते हैं । वे जनता की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को सरलता से बढ़ा सकते हैं, पर उनकी पूर्ति के लिए जिस तरह की सामाजिक तैयारी आवश्यक है, उसे उत्पन्न करना या तो उनके सामर्थ्य-क्षेत्र के बाहर है या इस पक्ष में वे अधिक सक्षम नहीं हैं ।

संचार मानव की एक बड़ी शक्ति है, पर उसकी अन्य शक्तियों की तरह भी [illegible] नहीं है । उसकी सीमाओं को समझना, उसकी संभावनाओं का पूरी तरह उपयोग कर सकने के लिए आवश्यक है। अनिश्चित भविष्य की अनेक चुनौतियों का सामना करने के लिए हमें इस अस्त्र का सफल और सार्थक उपयोग करना होगा। आने वाले कल के लिए यदि हम एक सूझयुक्त संचार नीति आज ही न बना सके तो सम्भव है कि हमारी समस्याएं और भी उलझ जाएं और हम इस उपयोगी अस्त्र का फलप्रद उपयोग न कर सकें ।

संचार और विकास

(2)

दूसरे महायुद्ध के बाद जिस समस्या ने दुनिया का ध्यान बड़ी तीव्रता से अपनी ओर आकृष्ट किया, वह थी विकास की समस्या। इस काल में संसार के राजनीतिक मानचित्र में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। अनेक देश जो सदियों तक विदेशी दासता के बंधनों में जकड़े थे, स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में विश्व समुदाय के सदस्य बने। राष्ट्रीय मुक्ति, राजनीतिक धरातल पर एक बड़ी उपलब्धि थी। अपने राजनीतिक संघर्ष में विजय पाकर इन देशों का ध्यान आर्थिक पिछड़ेपन और सामाजिक गतिहीनता की समस्याओं की ओर गया। स्वतंत्रता को सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक था कि इन देशों की औप-निवेशिक अर्थव्यवस्था और सामन्तवादी सामाजिक-गठन में मूलभूत परिवर्तन हों, सामान्य जनता का जीवन स्तर ऊंचा उठे। आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के जो आरम्भिक प्रयत्न इन देशों ने किए, उनमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली, झटपट प्रगति के उनके स्वप्न पूरे न हुए। कुछ समय बाद ही वे समझ गए कि समस्या को उन्होंने जितना सरल समझ रखा था, वह उससे कहीं अधिक जटिल थी। इसी बीच आर्थिक और सामाजिक न्याय की मांग सशक्त हुई और यह स्पष्ट हो गया कि विकास के कार्यक्रमों में तेजी लाना आवश्यक है। बहुपक्षीय विकास की नई व्यूहरचना उनके उत्तरदायित्वों का सबसे महत्वपूर्ण भाग बन गई। आर्थिक और सामाजिक विकास के संतोष-जनक प्रतिरूप की तलाश अभी भी जारी है।

विकास की समस्या पर जो संवाद हुआ है, उसमें उसकी पूर्व आवश्यकताओं के दो पक्ष उभरे हैं। पहला पक्ष है अभिवृत्तिक परिवर्तन और चारित्रिक कायापलट का; दूसरा है संस्थागत क्रांति और संगठनात्मक पुनर्रचना का।

विकास की प्रक्रिया का सूत्रपात मनुष्य के मस्तिष्क में होता है। आधु-निकता के लिए किया जाने वाला संघर्ष मूलतः सम-सामयिक मानव की मान्यताओं,

मूल्यों और कार्य-शैलियों को एक नया मोड़ देने का संघर्ष है। अभिवृत्तियां और मूल्य व्यवहार-प्रकारों को बदलते हैं। उनमें होने वाला परिवर्तन समाज के संस्थागत और संगठनात्मक आधार को भी प्रभावित करता है। विकास को दिशा और गति देने के लिए चारित्रिक क्रांति आवश्यक है। इस क्रांति को नए दृष्टिकोण और मूल्यों की अपेक्षा है। आधुनिक व्यक्तित्व का प्रमुख गुण है विवेकशील और तर्क-संगत दृष्टिकोण, जो जीवन और उसके बदलते परिवेश को कार्य-कारण संबंधों के आधार पर देख सके। परानुभूति, गतिशीलता और सक्रियता भी आधुनिक व्यक्तित्व के आवश्यक तत्व हैं। यह व्यक्तित्व अतीतबद्ध नहीं होता, वह परम्पराओं का वैज्ञानिक मूल्यांकन करता है और आज और आने वाले कल की चुनौतियों के प्रति सजग रहता है। उसमें उपलब्धि-आकांक्षा होती है और उसे परिवर्तन की संभावनाओं और आवश्यकता पर अटूट विश्वास होता है। श्रम, संपत्ति और बचत के संबंध में इस व्यक्तित्व में एक नया दृष्टिकोण होता है। वह श्रम से दूर नहीं भागता, झूठी आध्यात्मिकता उसे जीवन के भौतिक पक्षों से असंयुक्त नहीं करती, वह आगे आने वाले कल के लिए तात्कालिक तृप्ति को रोक सकता है और जांच-तौल कर साहसिक कदम उठाने से घबराता नहीं है। हर नई चुनौती उसके लिए एक प्रेरणा होती है, क्योंकि समस्याओं का समाधान खोज सकने की अपनी क्षमता में उसे अदम्य विश्वास होता है। विशेष स्थितियों में वह अनिवार्य से समझौता कर लेता है, पर ऐसे समझौते उसे प्रगति के नए रास्ते खोजने से नहीं रोकते। यह व्यक्तित्व भीड़ का अंग तो नहीं बनता, पर वह शेष समाज से सावयवी संबंध भी विकसित करता है, क्योंकि उसे सामूहिक शक्ति और नैतिकता पर विश्वास होता है।

ये अभिवृत्तिक और मूल्यों के परिवर्तन एक नया सामाजिक चरित्र विकसित करते हैं, जो संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तनों की आधारिक संरचना बनता है। नए सामाजिक संगठन का उद्देश्य मूलतः तीन प्रकार की अक्षमताओं को विकसित और पुष्ट करना होता है : साहचर्यात्मक, प्रशासन-प्रबन्ध संबंधी, और अनुसंधान-मूल्यांकन संबंधी। यह साफ है कि सामूहिक क्षमता के बिना न विकास संभव है, न आधुनिकीकरण। विकास के लिए न्याय और व्यवस्था का वातावरण अपेक्षित है, जो समर्थ सुप्रशिक्षित और ईमानदार लोक-प्रशासन द्वारा संभव है। नियोजन अपने आप में एक कला है, जो धीरे-धीरे विज्ञान

का रूप लेती जा रही है । नियोजन निपुणता तथा साधनों और मानवीय संबंधों का प्रबन्ध भी विकास के लिए अनिवार्य है । अनुसंधान क्षमता इसलिए आवश्यक है कि विकास-क्रम में उठने वाली समस्याओं के समाधान बिना विलम्ब के खोजे जा सकें । विकास की जो योजनाएं चल रही हैं, समय-समय पर उनका मूल्यांकन भी जरूरी होता है, ताकि उनके तात्कालिक और दीर्घकालिक हानि-लाभ का लेखा-जोखा होता रहे और उनमें होने वाले गतिरोधों का भी विश्लेषण किया जा सके । इन क्षमताओं की अभिव्यक्ति के लिए राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और वैज्ञानिक संस्थाओं की एक ऐसी श्रृंखला आवश्यक होती है, जो राष्ट्रीय विकास के विभिन्न पक्षों की मांगों को पूरा कर सके ।

नियोजन का तकनीकी और प्रायोगिक पक्ष अपने आप में बड़ा महत्वपूर्ण है । विकास के लक्ष्यों को निर्दिष्ट करना, प्राकृतिक और मानवीय साधनों का निर्धारण, विकास कार्यक्रमों की पूर्वताओं संबंधी निर्णय, लागत-लाभ विश्लेषण के आधार पर पूंजी लगाने के बारे में निश्चय, योजनाओं में अंतरावलंबन और पूरकता विकसित करना तथा मूल्यांकन आदि नियोजित विकास के आवश्यक अंग हैं । यदि मैंने आधारिक संरचना पर जोर दिया है, तो वह केवल इसलिए कि अनुभव यह बताता है कि प्राविधिक रूप से पूर्ण और निर्दोष योजनाएं भी मानवीय प्रयोजन के अभाव में असफल हो जाती हैं । मुझे ऐसा कोई भ्रम नहीं है कि अभिवृत्तियां और मूल्य या सामाजिक संगठन किसी जादू की छड़ी को घुमाने से ही बदल जाते हैं । मानव के पास दुर्भाग्य से, ऐसी जादू की छड़ी नहीं है । नियोजन के परिणाम, बहुत अंशों में, एक नए मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिवेश को जन्म देते हैं। यह कहना हास्यास्पद होगा कि विकास की योजनाएं तभी शुरू की जाएं जब उनके अनुकूल अभिवृत्तिक वातावरण बन जाए । आवश्यक यह है कि प्रारम्भिक योजनाओं का निविष्ट-निर्धारण करते समय हम उन कार्यक्रमों का भी समर्थन करें, जो प्रगति-प्रेरक पर्यावरण बनाने में सहायक हों । कल्पनाशील और उद्देश्यपूर्ण संचार-व्यवस्था के विकास को इन योजनाओं में प्राथमिकता मिलनी चाहिए ।

विकास के लिए संचार आवश्यक है, पर वह अपने आप में पर्याप्त नहीं है । उसकी अग्रगामी और पूरक भूमिकाएं विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती हैं और योजनाओं के कार्यान्वयन में अनेक रूपों में सहायक होती हैं ।

पहले हम संचार की वैकासिक संभावनाओं पर विचार करें ।

विकास की योजनाएं छोटी हों या बड़ी--स्थानीय हों या क्षेत्रीय--उन्हें राष्ट्रीय संदर्भों से अलग नहीं किया जा सकता । इस प्रकार की योजनाओं के पोषण के लिए व्यापक राष्ट्रीय योजनाएं भी आवश्यक होती हैं । भावात्मक एकता और राष्ट्रीय समाकलन का प्रत्यक्ष प्रभाव इन योजनाओं पर पड़ता है । विकासशील देशों में राष्ट्र-निर्माण और आर्थिक विकास प्रायः एक दूसरे के पर्यायवाची हैं । संचार राष्ट्रीयता की भावना विकसित कर सकता है, नागरिकों को राष्ट्रीय हितों के संबंध में जागरूक बना सकता है और विघटनकारी प्रवृत्तियों के संबंध में उन्हें सचेत कर सकता है । विकास के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय आत्मविश्वास सशक्त हो और सामान्य नागरिक को राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रति आदर हो । संचार द्वारा यह आत्म विश्वास और आदर पैदा कराया जा सकता है ।

विकास संबंधी अधिकांश निर्णय राजनीतिक निर्णय होते हैं । राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न धारातलों और अंगों में संचार की सुलभता पर सही निर्णयों का समय पर लेना निर्भर होता है । उनके बीच का संचार-अंतराल अनेक समस्याओं को जन्म दे सकता है । एक ओर जहां यह आवश्यक हैं कि ऊंचे धरातल से संदेश बिना विकृत हुए नीचे के धरातल तक पहुंचते रहें, दूसरी ओर यह भी जरूरी है कि ऊंचे धरातल को नीचे होने वाली प्रतिक्रियाओं का पता चलता रहे--सामान्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं और जनता की प्रतिक्रियाएं ऊपर तक पहुंचती रहें । यही बात प्रशासन व्यवस्था पर लागू होती है । प्रशासनिक. . .गतिरोध, कई स्थितियों में, दोषपूर्ण संचार के कारण होता है । विकास के विभिन्न पक्षों के लिए उत्तरदायी विभागों में बहुधा पर्याप्त संवाद नहीं होता और ऊपर से नीचे की ओर संदेश बड़ी धीमी गति से और प्रायः क्षत-विक्षत होकर पहुंचते हैं । यहां भी विभिन्न धरातलों से प्रतिक्रिया न मिलने के कारण योजनाओं में जड़ता और एकरूपता बनी रहती है, स्थिति के अनुसार उनका परिमार्जन नहीं हो पाता । योजनाओं के सफल और सुचारू कार्यान्वियन के लिए संचार के इस पक्ष पर ध्यान अपेक्षित है ।

जन-सहमति और जन-सहयोग विकास योजनाओं की सफलता के लिए अनिवार्य है । राष्ट्रीय लक्ष्य और उनकी प्राप्ति के साधन इन दोनों पर

न्यूनतम सहमति के बिना विकास योजनाओं का क्रियान्वयन यदि असंभव नहीं तो कठिन जरूर होता है । जन-सहयोग की भावना विकसित करके ही साधनों और जनशक्ति का समुचित संगठन किया जा सकता है । संचार साधनों के योजनाबद्ध उपयोग से जनता का ध्यान विकास योजनाओं पर केन्द्रित किया जा सकता है और उसकी रुचि इन योजनाओं में जाग्रत की जा सकती है । जनशक्ति और साधनों का संगठन ऐसी स्थिति में अपेक्षाकृत सरल होता है ।

विकास के लिए अभिवृत्तिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बहुत कुछ कहा जा चुका है । एक अन्य संदर्भ में संचार द्वारा इस प्रकार के परिवर्तन लाने की कठिनाइयों के बारे में भी मैं कुछ कहूंगा । यहां इतना कहना ही काफी होगा कि कोई किसी दूसरे के कहने मात्र से ही अपना दृष्टिकोण और अपनी मान्यताएं नहीं बदल लेता । संचारकर्मी इस तथ्य से भलीभांति परिचित हैं । जहां आदेश विफल होता है, प्रयोग और निदर्शन सफल हो जाते हैं । अल्पकालिक समय-परिप्रेक्ष्य में अभिवृत्तियां बदलने में संचार की शक्ति निश्चित रूप से सीमित है, पर प्रयोग की प्रवृत्ति जाग्रत करने में वह अधिक सक्षम है । निदर्शन संचार की एक उपयोगी विधि है । यदि प्रयोग और निदर्शन सफल हुए तो वे अभिवृत्तियों को नया और अपेक्षित मोड़ देते हैं । संचार के अध्ययनों से यह भी ज्ञात होता है कि जन-संचार के साधनों का शैक्षिक प्रयोग तकनीक और विधि सिखाने के लिए, अभिवृत्ति बदलने की तुलना में, अधिक सफलता से किया जा सकता है । प्राविधिक परिवर्तन की दृष्टि से यह तथ्य अपने आप में महत्वपूर्ण है, पर वह इसलिए भी उल्लेखनीय है कि नई विधियों पर अधिकार अभिवृत्ति परिवर्तन को सरल बना देता है ।

अब तक मैंने आपके सामने संचार की विकास संबंधी संभावनाओं को जिस तरह रखा है, उससे यह भ्रम हो सकता है कि संचार की प्रक्रिया बहुत सरल है और संदेश बिना किसी कठिनाई के अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न कर लेते हैं । संभावनाएं सब अपने स्थान पर ठीक हैं, पर प्रक्रिया बहुत ही जटिल है । संदेश और परिणाम के बीच अनेक समस्याएं हैं । उसकी जटिलता को समझने के लिए संचार प्रक्रिया के मुख्य तत्वों और उनसे संबद्ध समस्याओं का विश्लेषण जरूरी है ।

इस प्रक्रिया के मुख्य तत्व हैं :—

एक—संदेश का स्रोत ;

दो—संदेश की विषय-वस्तु ;

तीन—उद्दिष्ट श्रोता-दर्शक-पाठक ;

चार—संदेश संचार का माध्यम; और

पांच—संदेश का प्रभाव ।

संदेश को उसके स्रोत से अलग करके नहीं देखा जा सकता । इस संदर्भ में दो प्रश्न उठते हैं । पहला, संदेश-स्रोत की निपुणता और उसकी धारणा की प्रबलता के बारे में, दूसरा, श्रोताओं-दर्शकों-पाठकों में उस पर विश्वास के बारे में । संचारकर्ता अपने श्रोताओं-दर्शकों-पाठकों की रुचि कितनी जाग्रत करता है और कब तक उसे बनाए रखता है? जो संदेश वह दे रहा है, उसके संबंध में स्वयं उसकी धारण कितनी दृढ़ है और वह किस दृढ़ता और लगन से अपना अभिप्राय अभिव्यक्त करता है? श्रोताओं-दर्शकों-पाठकों की नजर में उसकी कीमत क्या है? वे उसके उद्देश्यों का मूल्यांकन किस तरह करते हैं? क्या वे उस पर विश्वास करते हैं? संचार का प्रभाव बहुत कुछ इन प्रश्नों के उत्तरों पर अवलंबित होता है ।

विकास संदेशों की विषय वस्तु के बारे में भी इसी तरह के सवाल उठते हैं । क्या संचार अर्थ का संप्रेषण सफलता से करता है? दूसरे शब्दों में, जो अर्थ संचारकर्ता प्रेषित करना चाहता है, क्या ठीक वही अर्थ श्रोता-दर्शक-पाठकों द्वारा ग्रहण किया जाता है? या, संचार प्रक्रिया में अथवा सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण उसमें अर्थ-विकृति उत्पन्न हो जाती है ? इस महत्वपूर्ण प्रश्न के साथ कई व्यावहारिक प्रश्न भी जुड़े हैं। क्या संदेश श्रोताओं-दर्शकों-पाठकों की अपेक्षाओं और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में प्रासंगिक है? संदेश में जो नए व्यवहार-प्रकार सुझाए जाते हैं, उनमें और श्रोताओं-दर्शकों-पाठकों की मान्यताओं और परम्परा में कितनी संगति या विसंगति है? क्या वे व्यवहार-प्रकार संस्कृति के तात्कालिक संदर्भ में स्वीकार किए जा सकते हैं? अर्थ का सही संप्रेषण आवश्यक है । साथ ही यह देखना भी जरूरी है कि संप्रेषित व्यवहार-प्रकारों का स्वरूप ऐसा न हो कि उनमें और स्थापित मान्यताओं में तालमेल होने के बजाय संघर्ष हो जाए ।

संचार प्रक्रिया की चर्चा करते समय दर्शकों-श्रोताओं-पाठकों की प्रवृत्ति को नहीं भुलाया जा सकता । अन्तर–वैयक्तिक संचार में श्रोता या दर्शक की स्थिति, रुचि और अभिवृत्ति के अनुकूल संदेश को ढाला जा सकता है, पर जन-संचार सामान्यतः मिले-जुले समूह को संदेश देता है । अभिवृत्ति और मूल्यों को बदलने के ध्येय से प्रेरित संचार भी अपने श्रोताओं, दर्शकों और पाठकों की अभिवृत्तियों और मूल्यों की अवहेलना नहीं कर सकता । ऐसा करने के विपरीत परिणाम हो सकते हैं । श्रोताओं, दर्शकों और पाठकों की प्रस्थिति, सामाजिक संस्तरण में उनका स्थान और उनके न्यस्त हित, संदेश के प्रति उनकी प्रतिक्रिया को स्वरूप देने में निर्णायक सिद्ध होते हैं । बहुत थोड़े संदेश ऐसे हैं, जो सीधे मत परिवर्तन में सफल होते हैं । इस क्षेत्र में नेतृत्व और समस्थिति समूह की मध्यस्थ की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है । ये प्रस्तावित परिवर्तनों के संबंध में व्यक्तियों और समुदाय के निर्णय को प्रभावित करते हैं ।

संचार माध्यमों की प्रकृति और प्रभावों के संबंध में पिछले दशक में बहुत चर्चा हुई है । इसका बहुत कुछ श्रेय मार्शल मेकलुहान को है, जिन्हें कई लोग इस युग का एक मसीहा मानते हैं । उनकी एक प्रसिद्ध उक्ति है, "माध्यम ही संदेश है ।" इसके दो अर्थ हैं: एक यह कि माध्यम का स्वरूप अपनी संभावनाओं और सीमाओं को स्वयं ही निर्धारित करता है, और दूसरा यह कि प्रत्येक माध्यम अपने कई ऐसे भक्त बना लेता है, जो उसकी विषय-वस्तु की अपेक्षा स्वयं उससे अधिक प्यार करते हैं । उनकी पहली बात अंशतः मानी जा सकती है । समाचारपत्र को व्यक्ति अपनी सुविधा के समय पढ़ सकता है और उसमें भी अपनी रुचि के विषयों को एक से अधिक बार भी पढ़ सकता है । इसके विपरीत रेडियो और टेलीविजन के विशेष कार्यक्रम खास समय पर ही सुने-देखे जा सकते हैं; व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार उन्हे कई बार सुन और देख नहीं सकता । चल-चित्रों को देखने के लिए व्यावसायिक सिनेमा घरों में खास समय पर जाना जरूरी होता है । वहां भी अपने इच्छित दृश्य बार-बार नहीं देखे जा सकते । दूसरी बात मानना कठिन है, क्योंकि माध्यम का उसकी विषय-वस्तु से असंबद्ध कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता । आप रेडियो क्यों सुनते हैं ? सिर्फ इसलिए कि आपको रेडियो से प्यार है? या इसलिए कि उसके एक या अधिक प्रकार के कार्यक्रमों में आप की रुचि है? मान लीजिए कि रेडियो पर कुछ दिनों तक समाचार, संगीत, चर्चाओं और वार्ताओं के कार्यक्रम बंद हो जाएं

और उनके स्थान पर कुत्तों के भौंकने का एकरस रिकार्ड बजाया जाने लगे, तो क्या तब भी आपको माध्यम से प्यार रहेगा और मेकलुहान के स्वर में स्वर मिलाकर आप कहेंगे—माध्यम ही संदेश है । अखबार भी आप केवल दृष्टि-सुख या स्पर्श-सुख के लिए नहीं पढ़ते । प्रत्येक माध्यम से विशिष्ट प्रकार की विषय-वस्तु अपेक्षित रहती है । इन अपेक्षाओं का कारण या तो माध्यम के ऐतिहासिक विकास में देखा जा सकता है, या माध्यम द्वारा विकसित और प्रसारित स्वयं-प्रतिमान में, या विशेष घटनाओं और स्थितियों के संदर्भ में । अधिकांश माध्यम एक से अधिक प्रकार की रुचियों और विषय-वस्तु संबंधी अपेक्षाओं का ध्यान रखते हैं । ये रुचियां और अपेक्षाएं कालांतर में बदलती भी हैं और बदली भी जा सकती हैं । भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक परिवेशों और सामाजिक व्यवस्थाओं में संचार की शैलियां अलग तरह की होती हैं, क्योंकि उनमें माध्यमों से भिन्न प्रकार की अपेक्षाएं की जाती हैं । मेकलुहान के इस विचार से सहमत होना कठिन है कि संचार की विषय-वस्तु का विश्लेषण और उसके प्रभावों का अध्ययन विशेष रूप से उपयोगी नहीं है, क्योंकि उसके स्वरूप और गुणों में ही उसका संदेश और उसका प्रभाव निहित है ।

संचार साधनों की अपनी सीमाएं होती हैं । एक सीमा से अधिक उनका वैकासिक उपयोग नहीं किया जा सकता । इन सीमाओं को समझ लेना जरूरी है, क्योंकि उन्हें समझ कर हम साधनों से असंभव अपेक्षाएं नहीं करेंगे । उनकी सीमाओं से हमें चिंतित नहीं होना चाहिए, क्योंकि इन साधनों की क्षमता और संभावनाओं का पूरा उपयोग अभी नहीं किया गया है । संचार साधनों की संभावनाओं के पूर्ण उपयोग के दो प्रमुख अवरोधक हैं—साधन के बारे में श्रोता, दर्शक और पाठक का रूढ़ प्रतिमान और संदेशवहन का रूढ़ स्वरूप । प्रत्येक साधन का ऐतिहासिक विकास उसके संबंध में कुछ खास अपेक्षाएं विकसित कर देता है । साधन का उपयोग यदि किसी अन्य लक्ष्य के लिए किया जाए, तो श्रोताओं, दर्शकों और पाठक की ओर से प्रतिरोध होता है । मानसिक रूप से उसके नए प्रयोजन को स्वीकार नहीं करते । दैनिक पत्रों से समाचारों और कुछ अंशों में वैचारिक विश्लेषण की अपेक्षा की जाती है । रेडियो मुख्यतः सूचना और मनोरंजन का साधन माना जाता है । सिनेमा से अधिकांशतः मनोरंजन की ही अपेक्षा की जाती है । ये रूप प्रतिमान एकाएक नहीं बदले

जा सकते । उन्हे बदलने के लिए समय और कल्पनाशील प्रयोग जरूरी होते हैं। अधिकांश संचार साधनों के संदेश और उनको वहन करने के तरीके भी रूढ़ हो गए हैं । ये तरीके नए वैकासिक संदेश सफलतापूर्वक जनता तक पहुंचाने में समर्थ नहीं होते । उनमें न जन-जीवन के मुहावरे की पकड़ होती है और न अपने दर्शकों, श्रोताओं और पाठकों की रुचि को जाग्रत रखने की शक्ति में विषय-वस्तु को कभी-कभी उन प्रतीकों से प्रस्तुत करते हैं, जो सामान्य जन के सांस्कृतिक अनुभव क्षेत्र से जुड़े हुए नहीं होते । यदि संचार व्यवस्था इस स्थिति में अपने उद्देश्य की प्राप्ति में पूरी तरह सफल नहीं होती, तो दोष साधनों का नहीं होता, उनके कल्पनाहीन उपयोग का होता है ।

संचार प्रक्रिया का अंतिम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है उसका प्रभाव। यदि संचार अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में विफल हुआ, तो पूरा संचार प्रयत्न ही व्यर्थ होता है। कभी-कभी संचार विचारों और व्यवहार-प्रकारों में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सफल होता है, पर इस प्रभाव की हर स्थिति में अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । संचार का सुप्त प्रभाव भी कम महत्व का नहीं होता इस प्रभाव के अन्तर्गत नए विचार जड़ तो पकड़ लेते हैं, पर उसका परिणाम कुछ समय बाद स्पष्ट होता है। निदर्शन-परिणाम अनुमोदित व्यवहार-प्रकार की व्यावहारिकता प्रमाणित कर देता है। वह आवश्यक नहीं कि उसके कारण तत्काल ही व्यवहार परिवर्तन भी हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति अपने व्यवहार में स्वयं ही परिवर्तन करना चाहता है, पर समर्थन के अभाव में वह ऐसा कर नहीं सकता। संचार इस स्थिति में उसे समर्थन देकर परिवर्तन को संभव बनाता है। संचार के संगठित और लगातार प्रयत्नों से एक ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है कि लोगों को यह लगने लगे कि परिवर्तन की आंधी आई है और सभी अपना व्यवहार बदल रहे हैं। बहुत से लोग पिछड़ जाने के भय से नए व्यवहार-प्रकार अपनाने को तत्पर हो जाते हैं । इन प्रभावों को हम परिवर्तन के लिए उपयोगी मान सकते हैं।

संचार कुछ विपरीत प्रभाव भी उत्पन्न कर सकता है। कभी-कभी वह विचार और व्यवहारों को बदलने के बजाय पूर्वाग्रहों को सशक्त करता है और कभी-कभी वह जिन समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित होना चाहिए, उनसे समुदाय का ध्यान हटा देता है। विकास योजनाओं का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से किए गए

सगठित संचार प्रयत्न अपने विपरीत प्रभावों के कारण उनकी सफलता की संभावना को ही नष्ट कर देते हैं। इस कोटि के प्रभावों का अध्ययन गहराई में जाकर किया गया है। मैं यहां विपरीत फलदायिनी कुछ प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करूंगा। संचार कहता है, "दूसरे सब अपने तरीके बदल रहे हैं, तुम भी बदलो।" प्रतिक्रिया होती है, "सब तो बदल ही रहे हैं, मैं यदि न बदलूं तो क्या बिगड़ेगा?" संचार द्वारा तुलना जनित का दबाव कभी-कभी ऐसी दिशा में और इस प्रकार के परिवर्तनों की प्रेरणा देता है जो या तो संभव के सीमा-क्षेत्र में नहीं होते या विकास की प्रक्रिया पर जिनके विघटनकारी प्रभाव होते हैं। भारत यदि चाहे भी तो पांच या दस वर्षों में पश्चिम के सम्पन्न देशों का समृद्धि स्तर नहीं पा सकता, पर तुलना के दबाव में कुछ लोग अपना ध्यान इसी स्तर पर केन्द्रित किए रहते हैं। अनुशरण की संस्कृति उपभोक्तावाद जिसका विशेष गुण है, विकास के उद्देश्यों से जनता के एक अंग को विमुख करती है। संचार झूठे आत्म-संतोष (झूठे इतमीनानको) भी जन्म दे सकता है। यह तब होता है जब प्रतिक्रिया होती है, "जो कुछ किया जाना चाहिए, किया ही जा रहा है। जो होगा, ठीक होगा। मैं क्यों चिंता करूं?" इसके विपरीत, वह कभी-कभी चिंता को इतना बढ़ा देता है कि व्यक्ति अपने आपको असहाय मानकर निष्क्रिय हो जाता है। संसार की एक प्रतिक्रिया यह भी हो सकती है कि व्यक्ति संसार और देश की उलझनों से घबराकर अपनी एक सीमित व्यक्तिगत दुनिया में सिकुड़ जाए। संचार के दो निपुण अध्येताओं—मर्टन और लाजर्सफेल्ड—ने संचार के एक चिंताजनक पक्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है: संचार उदासीनता को जन्म देता है; उसका प्रभाव मादक पदार्थों के प्रभाव जैसा हो सकता है। उनका कहना है कि बहुसुचित नागरिक, विशेष स्थितियों में, सक्रिय नागरिक नहीं रहता, वह अक्रिय नागरिक बन जाता है।

इस तरह हम देखते है कि संचार की प्रक्रिया उलक्षनों से भरी और बहुत ही जटिल है? विशेषकर उसके प्रभावों की भविष्यवाणी कर सकना कठिन है। पर इन कठिनाइयों के सामने घुटने टेक देने से भी काम नहीं चलेगा, क्योंकि हम यह मानकर चले हैं कि विकास का अभियान वस्तुतः समाज का मन जीतने का अभियान है। उलझनों में भी रास्ता खोजा जा सकता है। इस दिशा में दो कदम जरूरी हैं—पहला, संचार साधनों का समन्वित विकास जो न केवल उनकी पहुंच को विस्तारित करे, वरन उनके प्रभावों को भी तीक्ष्णता दे; और

दूसरा, विकास की दृष्टि से देश और समय के परिप्रेक्ष्य में संचार की नयी व्यूह रचना ।

पहले हम भारत की सम-सामयिक संचार स्थिति का सर्वेक्षण करें। इस क्षेत्र में एक साथ कई विसंगतियां दिखाई पड़ती हैं :

एक---स्वाधीनता के पहले पच्चीस वर्षों में जन-संचार के साधनों का समुचित और समन्वित विकास नहीं हुआ। यह मानने के कारण हैं कि इसी काल में संचार के कुछ परम्परागत साधनों का ह्रास हुआ है ।

दो---जन-संचार के कार्यक्रम और विषय-वस्तु मुख्यत: नगरों और समृद्ध वर्ग की अभिरुचि को ध्यान में रखकर विकसित किए जाते हैं ।

तीन---सूचना और विश्लेषण में 'स्थानीय' और 'क्षेत्रीय' की तुलना में 'अंतर्राष्ट्रीय' और 'राष्ट्रीय' को कहीं अधिक स्थान दिया जाता है।

चार---विकास के प्रश्नों और समस्याओं पर ध्यान देना आरम्भ अवश्य किया गया, पर इस दिशा में साहसिक और कल्पनाशील प्रयोगों का अभाव बना रहा ।

दैनिक और सप्ताह में दो या तीन बार छपने वाले समाचार पत्रों की 1970 में, कुल मिला कर सिर्फ चौरासी लाख बाईस हजार प्रतियां छपतीं थीं। देश में, 1971 में, 69 रेडियो प्रसारण केन्द्र थे, जिन्हें 138 ट्रांसमीटर उपलब्ध थे, जिनमें से कई बड़ी शक्ति वाले भी थे। पच्चीस वर्ष पूर्व की स्थिति में सुधार तो बहुत हुआ, पर देश की सांस्कृतिक विविधता, भाषाओं और बोलियों के अंतर और देश के विभिन्न वर्गों और हित समूहों को देखते हुए यह संख्या अभी भी बहुत कम है। इसीलिए रेडियो के अधिकांश कार्यक्रम सामान्य रुचि के ही हो सकते हैं, विशिष्ट समूहों के लिए विशेष कार्यक्रमों की संख्या अनिवार्यत: सीमित होती है । संसार के कई छोटे या विकासशील देशों की तुलना में हमारी प्रसारण क्षमता अभी भी बहुत कम है। जापान जैसे छोटे देश में 1968 में 652 ट्रांसमीटर थे, मेक्सिको में 528, कनाडा में 392, सोवियत यूनियन में 407 और अमरीका में 6,337 ट्रांसमीटर थे। फिल्म निर्माण के क्षेत्र में तो भारत बहुत आगे है, पर देश के भौगोलिक विस्तार और जनसंख्या को देखते हुए सिनेमा घरों की संख्या बहुत कम है। 1966 में देश में 3,889 प्रदर्शन गृह थे और उनमें जनसंख्या

के एक हजार व्यक्तियों में से सिर्फ सात को सीटें उपलब्ध थीं। टेलीविजन अभी भी प्रायोगिक स्थिति में है। कई वर्षों तक दिल्ली में भारत का इकलौता दूरदर्शन केन्द्र था, अब इन केन्द्रों की संख्या में तीन की वृद्धि हुई है। अभी भी टेलीविजन की पहुंच बहुत ही सीमित है और जो समय उसे उपलब्ध है, उस पर कई दबाव हैं। प्रसारण के लिए सेटेलाइट का प्रयोग जब आरम्भ होगा, तब इसके क्षेत्र के विस्तार की संभावना है।

कुछ समय पहले मैंने कहा था कि परम्परागत संचार सूत्रों का ह्रास हो रहा है। इस विषय पर आधिकारिक सर्वेक्षण नहीं हुए, पर क्षेत्रीय संस्कृतियों के अध्येता इस बारे में प्राय: एकमत है। यहां एक महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख आवश्यक है। जन-संचार के साधनों और मौखिक संचार सूत्रों में कोई समन्वित संबंध नहीं है, पर उनका असंगठित सहयोग विशेष स्थितियों में प्रसार के क्षेत्र में बड़े प्रभावशाली परिणाम प्रस्तुत करता है। कई साल पहले जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, मैंने ग्रामीण भारत में आक्रमण संबंधी सूचना के विभिन्न पक्षों पर एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण कराया था। उसके परिणाम स्वयं मुझे अनपेक्षित लगे थे। सर्वेक्षण के लिए चुने गए कई गांवों में न रेडियो थे और न वहां समाचार पत्र पहुंचते थे। फिर भी आक्रमण के कुछ ही दिन बाद हुए इस अध्ययन से पता चला कि अलग-अलग प्रांतों में 58.3 प्रतिशत से लेकर 93.8 प्रतिशत लोगों को स्थिति की संतोषजनक जानकारी थी। इसी प्रकार का एक अन्य सर्वेक्षण प्रथम भारत-पाक युद्ध के संदर्भ में डा० योगेश अटल ने कराया था, जिसके परिणाम भी मेरे सर्वेक्षण के परिणामों से मिलते-जुलते थे।

सामाचार पत्रों में प्रकाशित सामग्री और रेडियो के कार्यक्रमों का प्रमाणिक वस्तु सामग्री-विश्लेषण अभी नहीं हुआ। समाज विज्ञान और मनोविज्ञान के छात्रों ने कुछ सीमित अनुसंधान इस विषय में किए हैं। यह निश्चित है कि इन दोनों प्रसार साधनों का ध्यान नगरों और समृद्ध वर्ग की ओर अधिक है, देश के बहुजन समाज की ओर कम। युवा पीढ़ी के लिए जिन नई पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया गया है, वे तो एकदम अल्पसंख्यक मॉड पीढ़ी के लिए हैं। यह स्वाभाविक है कि समाचार पत्र और पत्रिकाएं अपने पाठकों की अभिरुचि का ध्यान रखते हैं, जिनकी संख्या गांवों में और साधनहीनों में बहुत कम है। रेडियो के युववाणी कार्यक्रमों में देश के युवा वर्ग की दो भिन्न सांस्कृतिक धाराएं स्पष्ट

देखी जा सकती हैं। रेडियो का प्रसार गांवों में भी हो गया है, फिर भी उसके कार्यक्रमों में नगर और समृद्ध वर्ग की अभिरुचि के तत्वों का अनुपात बहुत अधिक होता है। टेलीविजन अनिश्चय की स्थिति में है। उसके अधिकांश ग्राहक समृद्ध वर्ग के हैं, जिनके लिए वह प्रस्थिति प्रतीक है, पर राष्ट्रीय नीति यह है कि उसका उपयोग मुख्यतः गांवों और विकास के लिए किया जाए। ग्राहकों का दबाव बढ़ रहा है। देखना है कि टेलीविजन का विस्तार उनसे किस सीमा तक प्रभावित होता है, घोषित नीति कितने समझौते करती है।

समाचार-पत्र, रेडियो और टेलीविजन ने अपने समाचारों और घटना विश्लेषणों में स्थानीय और क्षेत्रीय की तुलना में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय को अधिक स्थान दिया है। इनमें भी राजनीतिक समाचारों और विश्लेषणों का बाहुल्य होता है। अन्य पक्षों में संचार विशेषज्ञता का अधिक विकास नहीं हुआ। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि संचार साधनों का क्षेत्रीय और स्थानीय व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाया। दूसरा परिणाम यह हुआ कि सामान्य पाठक, श्रोता या दर्शक ने उन्हें अपने जीवन के तात्कालिक संदर्भों से जुड़ा हुआ नहीं पाया और उसने यह भी बहुत कम अनुभव किया कि वह वर्णित या विश्लेषित जीवन का अंग है। सहभागी होने की अनुभूति उसे बहुत कम स्थितियों में हुई।

संचार साधनों की विषय वस्तु में मनोरंजन और राजनीतिक समाचारों को पूर्वता मिलने के कारण वैकासिक संचार को कम समय मिला। संचार व्यवस्था को इस पक्ष का अधिक अनुभव नहीं था। आर्थिक साधनों की कमी और अपने प्रशासनिक पर्यावरण के कारण संचार साधन इन क्षेत्रों में अधिक विशेषज्ञता विकसित नहीं कर पाए। कृषि विकास, सामुदायिक विकास और परिवार नियोजन के क्षेत्रों में कार्यक्रमों को समय तो दिया गया, पर उनमें भी साहसिक और कल्पनाशील प्रयोगों की कमी थी। शिक्षा के पूरक माध्यमों के रूप में भी रेडियो और टेलीविजन का उपयोग हुआ, पर उनमें भी योजना और दृढ़ निश्चय की कमी थी।

संचार की पूरी वैकासिक संभावनाओं का उपयोग करने के लिए उसकी व्यवस्था के पुनर्गठन की समस्या पर नए सिरे से विचार करना होगा। साथ ही संचार की एक नई व्यूह रचना भी आवश्यक है।

इस व्यूह रचना का पहला तत्व होगा संचार साधनों की पहुंच को विस्तारित करना। समाचार-पत्र गांवों तक बहुत कम पहुंचते हैं। रेडियो वहां पहुंचा जरूर है, पर प्रसार केन्द्रों के पास ग्रामरुचि के और वैकासिक कार्यक्रमों के लिए बहुत कम समय है। टेलीविजन के विस्तार की जो योजनाएं बनी हैं, वे भी देश की जनता के बहुत कम अंश को स्पर्श कर सकेंगी। इस स्थिति में संचार साधनों के विकास को अग्रिमता देना आवश्यक है। जब भी यह प्रश्न उठाया जाता है, लोग उसमें आने वाले खर्च के बारे में चिंतित हो जाते हैं। अब समय आ गया है कि हम यह भी सोचें कि इन साधनों का विकास न करने की हमें क्या कीमत चुकानी पड़ेगी।

संचार के अध्येताओं का यह निश्चित मत है कि एक ही सूत्र से भेजे गए संदेश का प्रभाव कम पड़ता है, कई सूत्रों से दिए गए एक ही संदेश का अधिक। यह तथ्य संचार-साधनों के समन्वित और बहुसूत्रीय विकास की आवश्यकता सिद्ध करता है। जन-संचार के अतिरिक्त हमारा ध्यान उन पूरक संचार साधनों की ओर भी जाना चाहिए जो विभिन्न धरातलों पर संवाद की स्थिति उत्पन्न कर सकें, निर्देशन द्वारा नवाचारों की उपादेयता प्रमाणित कर सकें और आवश्यकता पड़ने पर अभ्यास में सहायक हो सकें। ग्रामीण धरातल पर जन-संचार और अन्तर वैयक्तिक संचार के मिले-जुले प्रयत्न अधिक फलप्रद होते हैं। उनकी उपयोगिता बढ़ाने के लिए इन दोनों प्रकार के साधनों में तालमेल और सावयवी संबंध विकसित होना चाहिए।

तीसरी आवश्यकता है जन-संचार के प्रतिमानों को बदलने की। इन साधनों से की जाने वाली अपेक्षाएं रूढ़ हो गई हैं। एक गरीब और पिछड़े देश में वे समृद्ध वर्ग के उपयोग के साधन मात्र नहीं रह सकते, उन्हें निश्चित रूप से एक व्यापक सामाजिक प्रयोजन का वहन करना चाहिए। यह तभी संभव होगा, जब हम ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकेंगे जिसमें संचारकर्मियों की रचनात्मक सृजनशीलता को प्रस्फुटित होने का अवसर मिले। नौकरशाही का पर्यावरण और फाइलों का जंगल सृजनशीलता को कुंठित करता है। परोन्मुखता की कार्य-संस्कृति साहसिक प्रयोगों की प्रेरणा नहीं देती। सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से अनुशासित स्वायत्तता नए वातावरण के निर्माण में सहायक हो सकती है।

संचार की विधाएं अब इतनी विकसित हो चुकी हैं कि उनका संचालन केवल सामान्य ज्ञान के सहारे नहीं किया जा सकता। इस क्षेत्र में विशेषज्ञता का विकास आवश्यक है। इन विशेषज्ञों का उत्तरदायित्व होगा संचार-साधनों की क्षमता का अधिकतम विकास और उपयोग। पत्रकारिता, रेडियो, टेलीविजन, और संचार की अन्य सभी विधाओं में विशेषज्ञता की आवश्यकता है, खासतौर पर वैकासिक संचार के विशेषज्ञों की। वे संचार के नए-नए प्रयोग करेंगे, नई संचार-शैलियां विकसित करेंगे और संदेश वहन के नए मुहावरों को जन्म देंगे। इन सब प्रयत्नों का उद्देश्य होगा जन अनुनय की एक नई प्रविधि विकसित करना।

संचार प्रयत्नों का वैज्ञानिक मूल्यांकन भी आवश्यक है। अब तक इस दिशा में जो प्रयत्न हुए हैं, उनमें केवल यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि कौन, कब, क्या पढ़ता-सुनता या देखता है। गहराई में जाकर संचार के प्रभावों को समझने के प्रयत्न बहुत कम हुए हैं। मूल्यांकन से वास्तविक मार्ग निर्देश तभी मिल सकता है, जब हम परिमाण के स्थान पर परिणाम का विश्लेषण करें।

आने वाले दशकों में संचार से कई नई मांगे की जाएंगी। क्या शिक्षा के क्षेत्र में जन-संचार के साधनों का व्यापक उपयोग संभव है? सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रशिक्षण में क्या वे नई भूमिका ग्रहण कर सकते हैं? पर्यावरण को दूषित होने से बचाने में उनका क्या उपयोग किया जा सकता है? कल आने वाली समस्याओं की पूर्वधारणा यदि हमें आज ही हो जाए, तो उनके निदान की तैयारी की जा सकती है।

सम-सामयिक विश्व एक संकट के दौर से गुजर रहा है। आने वाले समय के संबंध में निराशाजनक और चिंताजनक भविष्यवाणियां की गई हैं कि ये संकट की स्थितियां बढ़ेंगी ही, घटेंगी नहीं। हमें भविष्य के धक्कों के लिए और उनके द्वारा उत्पन्न नई-नई उलझनों और समस्याओं के लिए तैयार होना है। जीवन के ये उभरते आयाम हमसे अपेक्षा करेंगे कि हम पुराना बहुत कुछ भूलें और नया सीखें। मनोवैज्ञानिक धरातल पर संचार हमें अनिश्चय की इन घाटियों में लम्बी यात्रा के लिए तैयार कर सकता है और समस्या-समाधान की हमारी क्षमताओं को भी तीक्ष्ण बना सकता है।